Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

जन आंदोलनकारी कविता

डॉ अर्चना त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

Article Info
Volume 5, Issue 2
Page Number : 52-59
Publication Issue :
March-April-2022
Article History
Accepted : 15 March 2022
Published : 30 March 2022

सारांश- जन आंदोलन से प्रभावित कविताओं के यदि विस्तार और महत्वपूर्ण पक्ष और ठोस पक्ष की बात की जाए तो जन आंदोलनकारी कविताओं के साथ प्रतिबंधित साहित्य को जोड़कर देखा जा सकता है जिसमें जन आंदोलन से प्रभावित कविताओं की ही तरह आक्रोश और जन–जन को शोषण के प्रति विरोध करने का आवाह्न हुआ है।

मुख्य शब्द- जन, आंदोलन, कविता, शोषण, सामाजिक, दासता।

वह आंदोलन जो जनता के हित में किया जाए जन आंदोलन है। यदि जन को व्यापक अर्थ में समझा जाए तो जन का अर्थ है समाज का वह मेहनतकश मज़दूर जो भौतिक मूल्यों का उत्पादन करता है। यह भारत का शोषित वर्ग है, इसी जन की वर्ग चेतना जिस पल अपनी माँगों को व्यक्त करना शुरू करती है वही पल एक आंदोलन की रूपरेखा की भी होती है। पूँजीवादी समाज में जन की दुर्दशा तथा उत्पादन की शक्तियों के हाथों उसकी दासता को लगातार देखा जा रहा है। यह वही 'जन' वही मेहनतकश जनता है जिसके लिए नागार्जुन लिखते हैं–

"पूरी स्पीड में है ट्राम
खाती है दचके पे दचका
सटता है बदन से बदन
पसीने से लथपथ।
.....
कुली–मज़दूर है
बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला
थके–माँदें जहाँ–तहाँ हो जाते हैं ढेर
कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान
सच–सच बतलाओ

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

घिन तो नहीं आती है?

जी तो नहीं कुढ़ता है?"[1]

यही जन जब एक जुट होकर व्यवस्था के ख़िलाफ़ खड़ा होता है तो उसे जन चेतना कहते हैं। जन चेतना का विकास जन आंदोलन पर निर्भर है और यह आंदोलन का रूप लेता है मज़दूर, छोटे किसान, दलित की एकजुटता से। यही जन मिलकर जन आंदोलन और जन चेतना का निर्माण करते हैं। आगे चलकर यही जन, चेतना का साहित्य रचती है और परिवर्तन की एकजुट माँग करती है।

जन आंदोलनकारी कविता को दो मुख्य रूपों में देखा जा सकता है।

1. वह कविता जो समाज में हो रहे परिवर्तन की माँग से उत्पन्न आंदोलन या क्रांति से प्रभावित होकर लिखी जाती है।
2. वह कविता जो कवि के मन में सामाजिक उथल-पुथल से उत्पन्न चेतना के द्वारा लिखी जाती है और वे बाद में आंदोलन के नारों के रूप में तब्दील हो जाती है।

उदाहरण स्वरूप रामधारी सिंह दिनकर की कविता 'सिंहासन ख़ाली करो कि जनता आती है....' जे.पी. के संपूर्ण क्रांति का एक प्रमुख नारा था। ऐसे ही शंकर शैलेंद्र, गोरख पांडेय की कविताएँ आज भी परिवर्तन की माँग में सहायक हैं। शंकर शैलेंद्र की कविता- तू ज़िंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यकीन कर.... और गोरख की कविता- समाजवाद बबुआ धीरे-धीरे भाई..... पूरे राग में गाई जाती है, जो कि समाजवादी पार्टी पर व्यंग्य के रूप में भी गोरख की 'समाजवाद' कविता को देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि जन आंदोलन, सामाजिक या नव सामाजिक आंदोलन होने के केंद्र में शोषण निहित होता है, शोषण और शोषक वर्ग के ख़िलाफ़ जनता गोलबंद होकर इन शोषकों का असली चेहरा सामने लाती है और 'यह दुनिया बदल देनी चाहिए' की माँग करती है। किसी भी जन आंदोलन या जन आंदोलनकारी कविता के पीछे उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ ज़िम्मेदार होती हैं।

शोषणकारी परिस्थितियों और उनसे उपजे विद्रोह की बात करते हैं तो उन्नीसवीं सदी का ज़िक्र उल्लेखनीय है। वीरभारत तलवार द्वारा संपादित पुस्तक 'नक्सलबाड़ी के दौर में' में '*भारतीय समाजवादी आंदोलन*' नामक लेख में प्रधान हरिशंकर प्रसाद लिखते हैं- "उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अंग्रेज़ों की राजकीय सत्ता भारत के अधिकांश भागों में कायम हो चुकी थी। भारत के उन्नत कुटीर उद्योग को नष्ट कर दिया गया। यहाँ के गाँवों की प्राचीन आर्थिक आत्मनिर्भरता को समाप्त कर दिया गया, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामंतवाद पर कोई विशेष आघात नहीं पहुँचा, अंग्रेज़ी राज्यकाल के प्रारंभ में मुख्यत: छोटे किसान ही थे पर बाद में बँटाईदार और खेतिहर मज़दूर वर्ग भी महत्वपूर्ण हो गए, ये सभी वर्ग कड़ी मेहनत करने के बावज़ूद दाने-दाने को मोहताज हो गए। ये गाँव के धनी वर्ग के चंगुल में रहक़र एक प्रकार की दासता की ज़िंदगी बिताते रहे इन्हें सूद लेना पड़ता था, जिन्हें ये चुका नहीं पाते थे और इनकी जमीनें गिरवी रख ली जाती थीं। इन्हें कर्ज और सूद के भय से छुटकारा नहीं मिल पाता था। अत: ये गाँव के धनी वर्ग के चंगुल में रहक़र एक प्रकार की दासता की ज़िंदगी बिताते रहे हैं। यह सामंतवाद का परिवर्तित रूप था जिसे हम अर्थ-सामंतवादी व्यवस्था के नाम से

[1] प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, संपादक- नामवर सिंह, पृ. 36

संबोधित कर सकते हैं। अंग्रेज़ी शासन का मुख्य उद्देश्य भारत का औपनिवेशिक शोषण था। भारत से सस्ते दामों में खनिज और कृषि-उत्पादित कच्चा माल और गल्ला विदेश भेजा जाता था और इनके बदले में मँहगे दामों पर विदेशी वस्तुएँ भारत में बेची जाती थीं। विदेशी व्यापार के भारतीय दलालों को भी इस लूट का हिस्सा मिलता रहा। बदलती हुई 'उत्पादन की शक्तियों' के कारण 'उत्पादन संबंध' भी बदलने लगे और साथ-साथ अंतर्विरोध भी तीव्र होता गया, जिसका प्रभाव आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों पर भी पड़ा। अत: ये ही क्षेत्र मुख्य रूप से जन आंदोलनों की परंपरा कायम करने मे समर्थ हुए। यद्यपि इस प्रकार बंबई, अहमदाबाद, कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता), चेन्नई (तत्कालीन मद्रास), पंजाब, कानपुर, दिल्ली और अन्य तटवर्तीय क्षेत्रों के औद्योगीकरण की नींव पड़ चुकी थी, फिर भी उन्नीसवीं सदी में उद्योग-धंधों के विकास की गति बहुत ही धीमी रही। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी मिल-मज़दूर आंदोलन से प्राय: अछूती रही।"[2]

जन आंदोलनकारी कविता का स्वरूप नागार्जुन की 'वह कौन था' कविता में देख सकते हैं। तेलंगाना आंदोलन में कई किसानों को जेल में डाल दिया गया था, उन पर तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं, नागार्जुन लिखते हैं-

"बूचड़ों की क़ैद में है, भाइयों, साथी हमारे

तोड़कर हम जेल का फाटक

उन्हें आज़ाद करने जा रहे हैं..."[3]

इन पंक्तियों में जनांदोलनकारी कविता की पूरी बानगी देखी जा सकती है जिसमें चेतावनी देकर, बिना किसी लाग-लपेट के नागार्जुन कहते हैं 'तोड़कर जेल का फाटक हम छुड़ाने जा रहे हैं...' वहीं मुक्तिबोध अपनी दूरदृष्टि में देख रहे संघर्ष को जब व्यक्त करते हैं तो वह इस तरह सामने आता है-

"हमारी हार का बदला

चुकाने आएगा..... "[4]

इन पंक्तियों में शोषण ख़त्म करने के प्रति एक आशा जताई जा रही है और नागार्जुन सीधे कार्रवाई करने की बात करते हैं- 'हम छुड़ाने जा रहे हैं...'

जन आंदोलनकारी कविता की जब बात आती है तो आलोक धन्वा की कविता 'गोली दागो पोस्टर' उल्लेखनीय है-

"जिस ज़मीन पर

मैं अभी बैठकर लिख रहा हूँ

जिस ज़मीन पर मैं चलता हूँ

जिस ज़मीन को मैं जोतता हूँ "[5]

---

[2] नक्सलबाड़ी के दौर में, संपादक-वीरभारत तलवार, पृ. 183-84

[3] नागार्जुन: चयनित कविताएँ, संपादक- मैनेजर पांडेय, पृ. 13

[4] चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, पृ. 33

वरवरराव की जनांदोलनकारी कविता की समझ ही है कि वे नक्सलबाड़ी आंदोलन और आदिवासी आंदोलन पर ध्यान न देने वाली सरकार को चेताते हुए लिखते हैं–

"बंज़र मैदान से पूछो
जल से पूछो
आँखों में प्राणों को थामे रखने वाले
भूखे मुँह से पूछो
हाथ आकर भी मुँह में न पहुँची
फ़सलों और खेतों से पूछो"[6]

जनांदोलनकारी कविता लिखने में उर्दू कवियों/शायरों का महत्वपूर्ण स्थान है। उर्दू शायर मख़दूम एक तरफ़ आंदोलन से जुड़े भी रहे और दूसरी तरफ़ आंदोलन के समर्थन में लिखते भी रहे–

"फिरने वाली खेत की मेंड़ों पर बल खाती हुई
कंगनों से खेलती औरों से शरमाती हुई
अजनबी को देखकर ख़ामूश मत हो गाए जा
हाँ तेलंगन गाए जा, बाकी तेलंगन गाए जा"[7]

यही नहीं तेलंगाना आंदोलन पर प्रसिद्ध शायर क़ैफ़ी आज़मी लिखते हैं–

"जईफ (वृद्ध) माँएँ, जवान बहने
झुके हुए सर उठा रही हैं
सुलगती नज़रों की आँच में
भीगी–भीगी पलकें सुखा रही हैं
ज़रा पुकार दो बेचैन नौजवानों को
ज़रा झँझोड़ दो कुचले हुए किसानों को
इधर से काफिला–ए–इंकलाब गुजरेगा..."[8]

---

[5] दुनिया रोज़ बनती है, आलोक धन्वा, पृ. 29
[6] साहस गाथा, वरवरराव, पृ.66
[7] मख़दूम मोहिउद्दीन, बिसात–ए–रक्स, पृ. 16
[8] अभिनव क़दम–26, संपादक– धूमकेतु, पृ. 21

जन आंदोलनकारी कविता को हमेशा रूखी, नीरस रूप में ही देखा जाता रहा है। जबकि उपर्युक्त पंक्तियों में अन्य कविताओं की तरह पूरी संवेदना देखी जा सकती है। जहाँ संवेदना भी है ओज भी है और सामाजिक परिवर्तन की बेचैनी भी। सही रूप में जन आंदोलनकारी कविता एवं कवि को शुष्क श्रेणी में रखने के बजाए इन कवियों के अन्य और कविताओं पर ध्यान देने की ज़रूरत है।

उदाहरण स्वरूप – एक तरफ़ आलोक धन्वा 'गोली दागो पोस्टर' लिखते हैं दूसरी तरफ़ अन्य संवेदनशील मुद्दे– 'भागी हुई लड़कियाँ, जनता का आदमी, ब्रूनों की बेटियाँ' पर भी दृष्टिपात करते हैं और लिखते–लिखते 'शरद की रातें', 'सफ़ेद रात' जैसे कोमल मिज़ाज की कविताएँ लिखना नहीं भूलते। आलोक धन्वा जब पूरे आक्रोश में हैं तो लिखते हैं– 'आदमियत को जीवित रखने के लिए अगर/एक दरोगा को गोली दागने का अधिकार है/तो मुझे क्यों नहीं.....?' वहीं 'सफ़ेद रात' में लिखते हैं–

"पुराने शहर की इस छत पर
पूरे चाँद की रात
याद आ रही है वर्षों पहले की
जंगल की एक रात"[9]

एक बड़े जनकवि, के रूप में प्रसिद्ध नागार्जुन एक तरफ़ 'भोजपुर', 'वह कौन था', 'सच न बोलना', 'मैं तुम्हें अपना चुंबन दूँगा', 'काश क्रांति उतनी आसानी से हुआ करती' लिखते हैं दूसरी तरफ़ अत्यंत संवेदना और सहज रूप में 'अकाल और उसके बाद', 'पैने दाँतो वाली', 'गुलाबी चूड़ियाँ' और 'हरिजन गाथा' जैसे अति संवेदनशील मुद्दे को कटाक्ष रूप में समाज के सामने बड़ी आसानी से रख देते हैं। 'भोजपुर' कविता में नागार्जुन लिखते हैं–

"यही धुआँ में ढूँढ रहा था
यही आग मैं खोज रहा था
यही गंध थी मुझे चाहिए
बारूदी छर्रे की ख़ुश्बू!"[10]

वहीं आगे 'पैने दाँतों वाली' में कविता के बदलते स्वरूप और सौंदर्य का नया रूप और कथ्य देखा जा सकता है–

"धूप में पसरकर लेटी है/मोटी तगड़ी–अधेड़
मादा सुअर....
अखरती नहीं है भरे–पूरे थनों की खींच–तान
दुधमुँहे छौनो की रग–रग में

[9] दुनिया रोज़ बनती है, आलोक धन्वा, पृ. 91

[10] नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, संपादक–नामवर सिंह, पृ. 117

मचल रही है आख़िर माँ की ही तो जान!"[11]

नागार्जुन की 'सत्य' कविता से आज की उठा पटक को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है यह कविता ये भी स्पष्ट करती है कि कैसे जनांदोलनकारी कविताएँ समय और समय से पहले के लिए लिखी गई हैं-

"सत्य को लकवा मार गया है

वह लंबे काठ की तरह/पड़ा रहता है, सारा दिन

सारी रात/वह फटी-फटी आँखों से/टुकुर-टुकुर

ताकता रहता है.....

सोचना बंद/समझना बंद/याद करना!"[12]

नागार्जुन जन आंदोलन पर कविता लिखते समय अत्यंत भावावेग के समय भी कविता के रूप और सौंदर्य का ध्यान रखते हैं। अत: इनकी कविताएँ खरी-खरी बात कह देने के बावज़ूद भी नीरस और शुष्क नहीं लगतीं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'इस मृत नगर में' शीर्षक कविता में अत्यंत आसानी से इतनी बड़ी बात कह जाते हैं-

"इस मृत नगर में

रात-दिन मैं चलता हूँ

और अंत में वहीं पहुँच जाता हूँ

जहाँ से चलना शुरू करता हूँ"[13]

जनांदोलनकारी कवि और कविता की यह ख़ासियत है कि या तो मुद्दे को पूरे चेतावनी भरे शब्दों से पिरोया जाए या फिर सहज सरल शब्दों में कटाक्ष करते हुए बात रखी जाएगी। 'मैंने आवाज़ दी है' कविता शीर्षक के माध्यम से सर्वेश्वर जी उस विद्रूप व्यवस्था की तरफ़ इशारा करते हैं जो मनुष्य को जीते जी तो लाश बनने पर मजबूर करती ही है और सचमुच मृत्यु हो जाने पर उस व्यक्ति को लावारिश लाश घोषित कर वहाँ आना भी मुनासिब नहीं समझती, लोग आते भी हैं तो इसलिए कि उस लाश के पास जाने से क्या-क्या लाभ मिल सकता है। एक लाश की मन: स्थिति के माध्यम से हर उस मनुष्य की आवाज़ है यह कविता, जिसने भी इस समाज को सिर्फ़ दिया है लिया कुछ भी नहीं-

"मैंने आवाज़ दी है कोई अभी आएगा

लाश को मेरी वही खींच के ले जाएगा

रास्ते पर पड़ा हूँ इसका मत बुरा मानो"[14]

---

[11] वही, पृ. 80

[12] वही, पृ. 115-16

[13] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कविताएँ-2, पृ. 44

[14] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कविताएँ-1, पृ. 17-18

जनांदोलनकारी कविता समाज के हर उस पहलू को सामने लाती है जिससे समाज वीभत्स होने की कगार पर है। आज के कवि जो युग जागरण का गीत बड़े आराम से सोकर, खाकर, ऊँघकर लिखते हैं, इन पर कटाक्ष करती है सर्वेश्वर की यह कविता–

"मुझे नींद आ रही है
सोने दो
मेरे सामने काग़ज़
और मेरे हाथ में
स्याही से भरी क़लम
रात–भर रहने दो
सुबह आना
तुम्हें युग–जागरण का गीत मिल जाएगा"[15]

जनांदोलनकारी कवि कुमार विकल मानते थे कि 'कविता आदमी का निजी मामला नहीं है' वे कविता की कला के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी बख़ूबी समझते थे और वे अपने समय को समाज के शोषित और पीड़ित मनुष्य के प्रति नैतिक और मानवीय ज़िम्मेदारी से भी जोड़कर देखते थे, इसीलिए वे अपनी काव्य यात्रा में दोहरे–तिहरे संघर्ष का सामना कर रहे थे। वे 'डरा हुआ आदमी' कविता में लिखते हैं–

"इस घातक व्यवस्था में हर पतली त्वचा वाला
आदमी आरक्षित है
देखना तो यह है कि कौन बैसाखियों के सहारे
जीता है/ और कौन बिना बैसाखियों के
अपने नंगे शरीर से, किसी सुखद या दुखद अंत
तक जूझता है"[16]

यही कवि जब 'एक छोटी सी लड़ाई' में अपने भाव व्यक्त करता है तो कविता इस रूप में आती है–

"मुझे लड़नी है एक छोटी सी लड़ाई
एक झूठी लड़ाई में मैं इतना थक गया हूँ
कि किसी बड़ी लड़ाई के काबिल नहीं रहा
मुझे लडना है

[15] वही, पृ. 102–103
[16] संपूर्ण कविताएँ, कुमार विकल, पृ. 28

जनतंत्र में उग रहे वनतंत्र के ख़िलाफ़"[17]

जन आंदोलन के आदमियों को बहला-फुसलाकर सरकारी एन.जी.ओ में भेजने की प्रक्रिया के साथ आंदोलन को भी राजनीतिक बनाया जाने लगा है। इसीलिए कवि अपने संघर्षों में एक और संघर्ष को जोड़ता है और कहता है 'मुझे लड़ना है जनतंत्र में उग रहे वनतंत्र के ख़िलाफ़!'

सन् साठ के मोहभंग के बाद कविताएँ महत्वपूर्ण रूप से सामने आईं। नामवर सिंह ने जहाँ आज़ादी के बाद के 1950 के दशक को हिंदी साहित्य की दृष्टि से नव-रोमांटिक उत्थान का दौर कहा वहीं 60 के दशक को उन्होंने मोहभंग का दौर कहा। मैनेजर पांडेय ने नामवर सिंह द्वारा प्रयुक्त मोह और मोहभंग की शब्दावली और धारणा तथा उसके उत्प्रेरक तत्वों की पहचान के प्रति बुनियादी मतभेद प्रकट किया। उन्होंने कहा कि सवाल यह है कि स्वप्न भंग, मोह, भ्रम के शिकार कौन लोग थे? क्या नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, यशपाल, अमरकांत आदि के साहित्य से ये सिद्ध होता है?

लेकिन यदि समाज के व्यापक फलक में साहित्य को देखा जाए तो 1962 के चीन युद्ध में भारत की पराजय का प्रभाव भारत के सभी वर्ग के व्यक्तियों पर पड़ा, पराजय के बाद हुए मोहभंग को अन्य महत्वपूर्ण लेखकों में देखा जा सकता है। चाहे साठोत्तरी कविता हो, अस्सी के बाद की कविता हो, नक्सलबाड़ी के दौर की कविता हो या फिर नब्बे के बाद सामने आई कविताएँ हों जिससे समकालीनता का सवाल भी खड़ा होता है, इस दौर की कविताओं का आकलन सिर्फ़ कुछ चुनिंदा कवियों और लेखकों से ही तय नहीं होता। सन् साठ के बाद जो कविताएँ लिखी जाने लगीं, वे अधिक उग्र, साहसपूर्ण, विद्रोहात्मक, व्यंग्यपूर्ण और उत्तेजक स्वरों से भरी-पूरी थीं। अभिव्यक्ति की तीखी प्रणाली आने के मूल में साठ के बाद का विशद परिवेश रहा, चाहे वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक भी रहा हो, अत: जब वर्ण्य विषय बदलता है तो शिल्प प्रणाली या अभिव्यक्ति प्रणाली का बदलना स्वाभाविक होता है। साठ के बाद की कविता निश्चित रूप से अपनी एक अलग और सार्थक पहचान कायम करती है।

उपर्युक्त उल्लेख को जनांदोलनकारी कवियों के संदर्भ में जोड़कर देखा जाना चाहिए । जन आंदोलन से प्रभावित कविताओं के यदि विस्तार और महत्वपूर्ण पक्ष और ठोस पक्ष की बात की जाए तो जन आंदोलनकारी कविताओं के साथ प्रतिबंधित साहित्य को जोड़कर देखा जा सकता है जिसमें जन आंदोलन से प्रभावित कविताओं की ही तरह आक्रोश और जन-जन को शोषण के प्रति विरोध करने का आवाह्न हुआ है।

सन्दर्भ

1. नागार्जुन - खिचड़ी विप्लव देखा हमने, यात्री प्रकाशन, दिल्ली
2. साठोत्तरी कविता विद्रोही प्रतिमान, रतन कुमार पांडेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली
3. नक्सलबाड़ी आंदोलन और समकालीन हिंदी कविता, देवेंद्र, मेधा बुक्स, दिल्ली
4. प्रगतिशील कविता: कल और आज, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
5. बिसात ए रक्स - मोयुद्दीन मखदूम , पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कविताएं 1, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. किसान आंदोलन की साहित्यिक जमीन, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद।

[17] वही, पृ. 43